ISSN : 3108-0294
Asha Paras Vahuvishyak Bhartiya Shodh-Patrika
(BI-ANNUAL PEER-REVIEWED, ONLINE RESEACH JOURNAL)
आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
(अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित, ऑनलाइन शोध पत्रिका)
खंड-1, अंक-2 अक्टूबर-मार्च, 2025-26, apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

पंजाब में दलित अस्मिता और सामाजिक न्याय: डेरों की भूमिका का समाज-आध्यात्मिक विश्लेषण

गुरपिंदर कुमार
सहायक प्रोफेसर,
सेंटर फॉर वुमेन स्टडीज,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश

पंजाब में डेरा करिश्माई संतों द्वारा संचालित महत्वपूर्ण सामाजिक-आध्यात्मिक संस्थान हैं, जिन्होंने विशेष रूप से दलित समुदायों के बीच वैकल्पिक धार्मिक और सामाजिक पहचान के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यद्यपि सिख धर्म समानता और जाति-विरोध के सिद्धांतों पर आधारित है, फिर भी व्यवहारिक स्तर पर जातिगत भेदभाव सामाजिक संबंधों, धार्मिक सहभागिता और संसाधनों तक पहुँच को प्रभावित करता है (Jodhka, 2012)। इस संदर्भ में राधा स्वामी सत्संग ब्यास, डेरा सच्चा सौदा और रविदासिया डेरा जैसे संस्थान दलितों को सम्मान, सामूहिकता और आत्मसम्मान का अनुभव प्रदान करते हैं। यह अध्ययन तर्क देता है कि डेरा दलित अस्मिता के निर्माण में जटिल भूमिका निभाते हैं। एक ओर, वे दलितों को सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध वैकल्पिक पहचान, सांस्कृतिक स्वीकृति और सामुदायिक सुरक्षा प्रदान कर सामाजिक न्याय की भावना को सशक्त बनाते हैं। दूसरी ओर, इन डेरों की गुरु-केंद्रित संरचना, अनुशासन और अनुष्ठानिक व्यवस्था कई बार दलित अस्मिता को प्रभुत्वशाली सामाजिक-सांस्कृतिक ढाँचों के भीतर ही सीमित रखती है। इसके अतिरिक्त, जेंडर दृष्टिकोण से डेरा दलित महिलाओं को आध्यात्मिक सहभागिता का अवसर प्रदान करते हैं, किंतु नेतृत्व और निर्णय-निर्माण में उनकी भूमिका अपेक्षाकृत सीमित रहती है (Rege, 2013)। अतः यह शोध अध्ययन रेखांकित करता है कि पंजाब के डेरा न तो पूर्णतः मुक्तिदायक हैं और न ही पूर्णतः रूढ़िवादी, बल्कि वे ऐसे गतिशील सामाजिक-आध्यात्मिक स्थल हैं जहाँ दलित अस्मिता प्रतिरोध, अनुकूलन और आत्मनिर्माण की जटिल प्रक्रियाओं के माध्यम से विकसित होती है। इसलिए, सामाजिक न्याय के समकालीन विमर्श में डेरों की भूमिका को समझना अत्यंत महत्वपूर्ण है।

बीज शब्दः दलित, डेरा, पंजाब, जाति, जेंडर, आध्यात्मिकता, सामाजिक न्याय, संस्कृतिकरण।

1. परिचय

भारतीय समाज में जाति असमानता की सबसे स्थायी और प्रभावशाली संरचनाओं में से एक रही है, जो भूमि, श्रम, शिक्षा और आध्यात्मिक वैधता तक पहुँच को नियंत्रित करती है। पंजाब में, जहाँ सिख धर्म वैचारिक रूप से जाति

ISSN : 3108-0294
Asha Paras Vahuvishyak Bhartiya Shodh-Patrika
(BI-ANNUAL PEER-REVIEWED, ONLINE RESEACH JOURNAL)
आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
(अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित, ऑनलाइन शोध पत्रिका)
खंड-1, अंक-2 अक्टूबर-मार्च, 2025-26, apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

और अनुष्ठानिक पदानुक्रम को अस्वीकार करता है, वहीं व्यवहारिक सामाजिक जीवन में जातिगत विभाजन आज भी, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, स्पष्ट रूप से विद्यमान हैं (Jodhka, 2012)। दलित, जो पंजाब की जनसंख्या का लगभग एक-तिहाई हिस्सा हैं, अब भी बड़ी संख्या में भूमिहीन, आर्थिक रूप से हाशिए पर और सामाजिक रूप से पृथक हैं। संवैधानिक संरक्षण और आरक्षण नीतियों के बावजूद, जातिगत भेदभाव दैनिक जीवन में बना हुआ है, जो आवासीय पृथक्करण, व्यवसायिक अवसरों, विवाह संबंधों और धार्मिक सहभागिता को प्रभावित करता है।

पंजाब में सिख धर्म की समानतावादी शिक्षाओं और वास्तविक जातिगत भेदभाव के बीच यह विरोधाभास दलितों के बीच वैकल्पिक धार्मिक और सामाजिक संगठनों के उदय का कारण बना है। यद्यपि सिख धर्मग्रंथ समानता और जाति-विरोध पर बल देते हैं, समाजशास्त्रीय अध्ययन दर्शाते हैं कि भूमि, गुरुद्वारा प्रबंधन और ग्राम संस्थाओं पर प्रभुत्वशाली जाट सिखों का नियंत्रण दलितों को हाशिए पर बनाए रखता है (Jodhka, 2012)। मुख्यधारा के धार्मिक संस्थानों में नेतृत्व और सम्मानजनक स्थानों से बहिष्कार ने दलितों को ऐसे वैकल्पिक संस्थानों की खोज के लिए प्रेरित किया, जो उन्हें पहचान, सम्मान और सामूहिकता प्रदान कर सकें।

इसी संदर्भ में डेरा—जो करिश्माई संतों या गुरुओं द्वारा संचालित सामाजिक-आध्यात्मिक संस्थान हैं—पंजाब में दलित अस्मिता के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभरे हैं। डेरा केवल पूजा-स्थल नहीं हैं, बल्कि वे ऐसे जटिल सामाजिक संस्थान हैं जहाँ आध्यात्मिकता, जाति, जेंडर, सम्मान और सामाजिक न्याय एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। भक्ति, नैतिक शिक्षाओं और कल्याणकारी गतिविधियों के माध्यम से डेरा दलितों को ऐसे समावेशी स्थान प्रदान करते हैं, जहाँ वे अपमान और बहिष्कार के अनुभवों का प्रतिरोध कर सकते हैं। डेरों में सहभागिता कर रहे दलितों को आध्यात्मिक वैधता पुनः प्राप्त करने, सामूहिक पहचान बनाने और प्रभुत्वशाली धार्मिक संरचनाओं के बाहर वैकल्पिक नैतिक संसार की कल्पना करने का अवसर देती है।

समाजशास्त्रियों ने पंजाब के सामाजिक और राजनीतिक परिदृश्य में डेरों की बढ़ती भूमिका को महत्वपूर्ण माना है। उनका प्रभाव मुख्यधारा के संस्थानों की जातिगत असमानताओं को दूर करने में विफलता और दलित समुदायों की गरिमा की निरंतर खोज को दर्शाता है (Ram, 2012)। अनेक दलितों के लिए डेरा ऐसे स्थल हैं जहाँ धार्मिक सहभागिता जाति से नियंत्रित नहीं होती और सामुदायिक एकता सामाजिक धब्बा का स्थान ले लेती है। फिर भी, दलित मुक्ति में डेरों की भूमिका विवादास्पद बनी हुई है। कुछ विद्वान उन्हें जातिगत प्रभुत्व को चुनौती देने वाले प्रतिरोधी स्थल मानते हैं, जबकि अन्य का मत है कि वे भौतिक असमानताओं को आध्यात्मिक रूप देकर उनके राजनीतिक स्वरूप को कमजोर कर सकते हैं।

प्रतिरोध और अनुकूलन के बीच यह तनाव डेरों के साथ दलितों की सहभागिता को समझने का केंद्रीय बिंदु है। पंजाब के दलितों में ब्राह्मणवादी संस्कृतिकरण पर अपने अध्ययन में गुरपिंदर कुमार (2025) तर्क देते हैं कि दलित

ISSN : 3108-0294
Asha Paras Vahuvishyak Bhartiya Shodh-Patrika
(BI-ANNUAL PEER-REVIEWED, ONLINE RESEACH JOURNAL)
आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
(अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित, ऑनलाइन शोध पत्रिका)
ISSN : 3108-0294
खंड-1, अंक-2 अक्टूबर-मार्च, 2025-26, apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

अस्मिता का निर्माण अक्सर प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक मानदंडों के साथ आंशिक अनुकूलन के माध्यम से होता है। प्रत्यक्ष विद्रोह के बजाय, दलित कई बार अनुशासन, धार्मिक अनुष्ठान और गुरु-भक्ति जैसे व्यवहार अपनाकर सामाजिक सम्मान प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। यह स्थिति डेरों को केवल मुक्तिदायक या केवल रूढ़िवादी संस्था के रूप में देखने की सरल धारणाओं को चुनौती देती है।

इस प्रकार, डेरा एक विरोधाभासी सामाजिक क्षेत्र के रूप में कार्य करते हैं। एक ओर, वे जातिगत अपवित्रता की धारणाओं को अस्वीकार कर दलितों की आध्यात्मिक गरिमा को स्वीकार करते हैं, वहीं दूसरी ओर गुरु-केंद्रित सत्ता और नैतिक अनुशासन के माध्यम से नए प्रकार के पदानुक्रम भी स्थापित कर सकते हैं। यह द्वंद्व विशेष रूप से राधा स्वामी सत्संग ब्यास, डेरा सच्चा सौदा और रविदास डेरों जैसे बड़े संस्थानों में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जो जातिगत असमानताओं से विभिन्न तरीकों से संवाद करते हुए राज्य और राजनीति से भी जुड़े रहते हैं।

जाति और जेंडर के अंतर्संबंध पर ध्यान देने से यह स्थिति और जटिल हो जाती है। दलित महिलाएँ जाति और पितृसत्ता दोनों प्रकार के दमन का अनुभव करती हैं। यद्यपि डेरा उन्हें धार्मिक गतिविधियों में अपेक्षाकृत अधिक भागीदारी का अवसर देते हैं, फिर भी नेतृत्व और निर्णय-निर्माण में पुरुषों का प्रभुत्व बना रहता है (Rege, 2013)। डेरों में महिलाओं की भूमिका प्रायः सेवा, देखभाल और भक्ति तक सीमित रहती है, जिससे व्यापक जेंडर असमानताएँ भी प्रतिबिंबित होती हैं।

अतः डेरों को समझने के लिए संतुलित और समालोचनात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है, जो शक्ति, पदानुक्रम और सामाजिक एजेंसी के प्रश्नों को केंद्र में रखे। डेरा ऐसे जीवंत सामाजिक स्थल हैं जहाँ दलित असमानता की परिस्थितियों में सम्मान, पहचान और आकांक्षा के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं। जैसा कि गुरु (2009) ने कहा है, अपमान के विरुद्ध संघर्ष दलित राजनीति का मूल है, और आध्यात्मिकता इस संघर्ष में प्रतिरोध और अनुकूलन दोनों का माध्यम बन सकती है।

यह शोध-पत्र पंजाब के डेरों की भूमिका का विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास करता है कि वे दलित अस्मिता के निर्माण में कैसे योगदान देते हैं और उनकी सीमाएँ क्या हैं। आध्यात्मिकता और सामाजिक न्याय के व्यापक संदर्भ में डेरों को स्थापित करते हुए, यह अध्ययन दर्शाता है कि दलित अस्मिता प्रतिरोध और अनुकूलन के बीच जटिल सामाजिक प्रक्रियाओं के माध्यम से निर्मित होती है। इस प्रकार, यह शोध समकालीन पंजाब में आध्यात्मिकता को सामाजिक संघर्ष के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में समझने में योगदान देता है।

2. आध्यात्मिकता और सामाजिक न्याय: एक वैचारिक रूपरेखा

दलित आध्यात्मिकता को केवल आंतरिक या शुद्ध रूप से आध्यात्मिक खोज के रूप में नहीं समझा जा सकता। जैसा कि आंबेडकर (1987) ने स्पष्ट रूप से कहा, भारत में धर्म ऐतिहासिक रूप से जातिगत पदानुक्रम को वैध

ISSN : 3108-0294
Asha Paras Vahuvishyak Bhartiya Shodh-Patrika
(BI-ANNUAL PEER-REVIEWED, ONLINE RESEACH JOURNAL)
आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
(अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित, ऑनलाइन शोध पत्रिका)
ISSN : 3108-0294
खंड-1, अंक-2 अक्टूबर-मार्च, 2025-26, apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

ठहराने का माध्यम रहा है, जहाँ शुद्धता-अशुद्धता, कर्म और जन्म-आधारित कर्तव्य जैसी धारणाओं के माध्यम से असमानता को पवित्र रूप दिया गया। जाति व्यवस्था के निचले स्तर पर स्थित समुदायों के लिए धार्मिक बहिष्कार केवल प्रतीकात्मक नहीं, बल्कि भौतिक वास्तविकता भी था, जो शिक्षा, सामाजिक गतिशीलता और मानवीय गरिमा तक उनकी पहुँच को नियंत्रित करता था। इसलिए, दलितों की आध्यात्मिकता हमेशा अपमान, बहिष्कार और संरचनात्मक हिंसा के विरुद्ध संघर्ष से जुड़ी रही है (Guru, 2009)।

प्रमुख धार्मिक परंपराओं के विपरीत, जो सामाजिक यथार्थ से अलग आध्यात्मिक मुक्ति पर बल देती हैं, दलित आध्यात्मिकता जीवन के वास्तविक अनुभवों से उत्पन्न होती है। यह नैतिक समानता, सामूहिक पीड़ा और मानवीय गरिमा की स्थापना को केंद्र में रखती है। इस प्रकार, आध्यात्मिकता सामाजिक आलोचना का माध्यम बन जाती है, जो जातिगत प्रभुत्व को चुनौती देते हुए धार्मिक पहचान और नैतिक अधिकार को पुनर्परिभाषित करती है। यहाँ आस्था दमन को स्वीकार करने के बजाय सम्मान और अस्मिता के निर्माण का साधन बनती है।

इस संदर्भ में सामाजिक न्याय केवल आर्थिक संसाधनों के पुनर्वितरण तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें सामाजिक मान्यता और नैतिक समानता भी शामिल है। जातिगत उत्पीड़न केवल आर्थिक अभाव तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह व्यक्ति की गरिमा और पहचान को भी प्रभावित करता है। गुरु (2009) के अनुसार, अपमान का अनुभव दलित चेतना का केंद्रीय तत्व है, इसलिए न्याय के संघर्ष में भौतिक और प्रतीकात्मक दोनों स्तरों पर परिवर्तन आवश्यक है। ऐसे आध्यात्मिक स्थल, जो सम्मान और सामूहिकता को बढ़ावा देते हैं, इस प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

डेरा इसी आध्यात्मिकता और सामाजिक न्याय के संगम पर कार्य करते हैं। लंगर, कल्याणकारी गतिविधियों, सामूहिक पूजा और नैतिक शिक्षाओं के माध्यम से वे आध्यात्मिक मूल्यों को सामाजिक व्यवहार में रूपांतरित करते हैं। ये प्रथाएँ जन्म-आधारित पदानुक्रम के स्थान पर समानता, सहभागिता और नैतिकता को महत्व देकर जातिगत सीमाओं को चुनौती देती हैं। दलितों के लिए डेरों में भागीदारी आध्यात्मिक सम्मान और पहचान की पुनर्प्राप्ति का माध्यम बनती है।

फिर भी, डेरों में आध्यात्मिकता और सामाजिक न्याय का संबंध सरल नहीं है। गुरपिंदर कुमार (2025) के अनुसार, दलित अस्मिता का निर्माण अक्सर प्रतिरोध और अनुकूलन के बीच विकसित होता है। सामाजिक सम्मान प्राप्त करने के लिए दलित कई बार अनुशासन, अनुष्ठानिक व्यवस्था, शाकाहार और गुरु-भक्ति जैसे व्यवहार अपनाते हैं। कुमार इस प्रक्रिया को ब्राह्मणवादी संस्कृतिकरण के रूप में व्याख्यायित करते हैं, जो एक ओर सम्मान की खोज का साधन है, वहीं दूसरी ओर प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक मानदंडों को भी बनाए रख सकता है।

ISSN : 3108-0294
Asha Paras Vahuvishyak Bhartiya Shodh-Patrika
(BI-ANNUAL PEER-REVIEWED, ONLINE RESEACH JOURNAL)
आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
(अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित, ऑनलाइन शोध पत्रिका)
खंड-1, अंक-2 अक्टूबर-मार्च, 2025-26, apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

इस प्रकार, डेरों को केवल मुक्तिदायक संस्थान के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। वे जहाँ एक ओर दलितों को सम्मान और सामूहिकता प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर पदानुक्रम और आध्यात्मिक नियंत्रण की नई संरचनाएँ भी स्थापित कर सकते हैं। इसलिए, डेरों को समझने के लिए एक संतुलित दृष्टिकोण आवश्यक है, जो उनकी परिवर्तनकारी संभावनाओं और संरचनात्मक सीमाओं दोनों को ध्यान में रखे।

3. डेरों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और जाति-विरोधी परंपराएँ

पंजाब में डेरों के उदय को भारत की दीर्घकालिक जाति-विरोधी आध्यात्मिक परंपराओं के संदर्भ में समझना आवश्यक है। डेरों की वैचारिक जड़ें भक्ति और संत परंपराओं में निहित हैं, जिन्होंने ब्राह्मणवादी प्रभुत्व, कर्मकांडीय मध्यस्थता, जातिगत विशिष्टता और धार्मिक ज्ञान पर एकाधिकार को चुनौती दी। कबीर, नामदेव और विशेष रूप से गुरु रविदास जैसे संतों ने भक्ति, नैतिक आचरण और श्रम की गरिमा पर आधारित आध्यात्मिक समानता की अवधारणा प्रस्तुत की।

गुरु रविदास की शिक्षाएँ दलित समुदायों के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण थीं। उनकी वाणी ने जातिगत पदानुक्रम को अस्वीकार करते हुए उन लोगों की गरिमा को स्वीकार किया, जो सामाजिक रूप से हीन समझे जाने वाले कार्यों में संलग्न थे। उन्होंने कर्मकांडीय शुद्धता के स्थान पर नैतिक जीवन को आध्यात्मिक मूल्य का आधार माना। इस प्रकार, रविदास ने दलितों को एक वैकल्पिक नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि प्रदान की, जिसके माध्यम से वे जातिगत अपमान का प्रतिरोध कर सके। उनकी शिक्षाओं ने दलित समुदायों को अपनी अस्मिता और सम्मान व्यक्त करने की वैचारिक शक्ति दी।

पंजाब में औपनिवेशिक और उत्तर-औपनिवेशिक काल के दौरान ये जाति-विरोधी विचार संस्थागत रूप लेने लगे। यद्यपि सिख धर्म समानता पर आधारित है, फिर भी ग्राम समाज में भूमिधारी जाट सिखों के प्रभुत्व ने धार्मिक और सामाजिक संस्थानों में दलितों की भागीदारी को सीमित किया। इस विरोधाभास ने डेरों के उदय के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित कीं, जहाँ दलित बिना किसी अधीनता के अपनी धार्मिक आस्था व्यक्त कर सकते थे, संगठित हो सकते थे और सामूहिक पहचान का निर्माण कर सकते थे।

Juergensmeyer (1988) ने ऐसे संस्थानों को "वैकल्पिक सार्वजनिक क्षेत्र" (counter-publics) के रूप में वर्णित किया है, जहाँ हाशिए पर स्थित समुदाय प्रभुत्वशाली संस्थानों से अलग अपनी पहचान और विचार विकसित करते हैं। डेरा ऐसे स्थल बने, जहाँ दलित धार्मिक प्रतीकों की पुनर्व्याख्या कर सके, सामूहिक चेतना का निर्माण कर सके और सामाजिक बहिष्कार को चुनौती दे सके। इस प्रकार, डेरा केवल प्रतिक्रिया नहीं थे, बल्कि उन्होंने नए सामाजिक और नैतिक ढाँचे भी निर्मित किए।

स्वतंत्रता के बाद आर्थिक परिवर्तन, कृषि संरचना में बदलाव और राज्य की सामाजिक न्याय नीतियों की सीमाओं के कारण डेरों का विस्तार और तेज हुआ। यद्यपि संवैधानिक प्रावधानों ने कानूनी समानता प्रदान की, लेकिन सामाजिक जीवन में व्याप्त असमानताओं को पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सका। इस स्थिति में डेरों ने दलितों को सामाजिक सहयोग, कल्याणकारी सहायता और प्रतीकात्मक सम्मान प्रदान किया।

हालाँकि, डेरों के संस्थागत विकास के साथ नई प्रकार की पदानुक्रम भी विकसित हुई। करिश्माई गुरु नेतृत्व, अनुशासन और धार्मिक संरचना ने संगठनात्मक एकता को मजबूत किया, लेकिन साथ ही कुछ हद तक नई प्रकार की सत्ता संरचनाएँ भी स्थापित कीं। इस प्रकार, डेरों का इतिहास जाति-विरोधी आकांक्षाओं और सामाजिक सीमाओं दोनों से निर्मित हुआ है।

अतः डेरों को समझने के लिए उन्हें केवल धार्मिक संस्थान के रूप में नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, सामाजिक और आध्यात्मिक संघर्षों के परिणाम के रूप में देखना आवश्यक है। यह द्वैध विरासत आज भी समकालीन पंजाब में डेरों को दलित अस्मिता और सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में स्थापित करती है।

4. डेरा, जाति और दलित अस्मिता

पंजाब में डेरा ऐसे महत्वपूर्ण सामाजिक-आध्यात्मिक संस्थान के रूप में उभरे हैं, जिनके माध्यम से दलित समुदाय जातिगत बहिष्कार, सम्मान और सामूहिक पहचान के प्रश्नों से संवाद करते हैं। यद्यपि मुख्यधारा के धार्मिक संस्थान—विशेषकर सिख संस्थाएँ—समानता की बात करते हैं, फिर भी व्यवहारिक स्तर पर दलितों को पृथक पूजा, सीमित नेतृत्व और दैनिक अपमान का सामना करना पड़ता है (Jodhka, 2012)। इस संदर्भ में डेरा वैकल्पिक स्थल के रूप में कार्य करते हैं, जहाँ जातिगत पदानुक्रम को चुनौती दी जाती है, पुनर्परिभाषित किया जाता है और कभी-कभी आंशिक रूप से पुनः स्थापित भी किया जाता है। इस प्रकार, डेरों में दलित अस्मिता आध्यात्मिक गरिमा, सांस्कृतिक पहचान और आंशिक अनुकूलन की जटिल प्रक्रिया के माध्यम से विकसित होती है।

4.1 आध्यात्मिक गरिमा और समानता

डेरों का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है कि वे दलितों को आध्यात्मिक जीवन में सम्मानजनक स्थान प्रदान करते हैं। डेरा कर्मकांडीय शुद्धता-अशुद्धता के विचारों को अस्वीकार करते हुए भक्ति, सेवा, नैतिक आचरण और अनुशासन को आध्यात्मिक मूल्य का आधार मानते हैं। इससे दलित बिना किसी भेदभाव के पूजा, लंगर और धार्मिक गतिविधियों में भाग लेते हैं और आध्यात्मिक समानता का अनुभव करते हैं।

इस सहभागिता का गहरा सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। धार्मिक बहिष्कार जातिगत प्रभुत्व बनाए रखने का एक प्रमुख साधन रहा है, इसलिए डेरों में प्रवेश दलितों के लिए प्रतिरोध का माध्यम बनता है। यहाँ उन्हें नैतिक और आध्यात्मिक रूप से सक्षम व्यक्ति के रूप में मान्यता मिलती है, जिससे आत्मसम्मान और सामूहिक

आत्मविश्वास का विकास होता है। डेरा गरिमा को राजनीतिक अधिकार के बजाय आध्यात्मिक मूल्य के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिससे दलित बिना प्रत्यक्ष टकराव के भी अपनी अस्मिता स्थापित कर पाते हैं।

4.2 सामूहिक पहचान और सांस्कृतिक अस्मिता

व्यक्तिगत सम्मान के साथ-साथ डेरा सामूहिक दलित पहचान के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सत्संग, धार्मिक उत्सव और गुरु रविदास जैसे संतों की जयंती के आयोजन के माध्यम से डेरा एक साझा सांस्कृतिक चेतना का निर्माण करते हैं। यह प्रक्रिया दलितों में गौरव, ऐतिहासिक निरंतरता और सामूहिक एकता की भावना को मजबूत करती है।

दलित संतों की स्मृति का पुनर्स्थापन विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे दलितों को एक सम्मानजनक आध्यात्मिक परंपरा से जोड़ने का अवसर मिलता है। Juergensmeyer (1988) के अनुसार, ऐसे स्थल "वैकल्पिक सार्वजनिक क्षेत्र" का निर्माण करते हैं, जहाँ हाशिए के समुदाय अपनी पहचान और अनुभवों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। इस प्रकार, डेरा सांस्कृतिक प्रतिरोध और आत्मसम्मान के केंद्र बन जाते हैं। हालाँकि, यह अस्मिता प्रायः आध्यात्मिक और सांस्कृतिक स्तर तक सीमित रहती है और भूमि, श्रम तथा राजनीतिक शक्ति से जुड़ी संरचनात्मक असमानताओं को प्रत्यक्ष रूप से चुनौती नहीं दे पाती।

4.3 अस्मिता और अनुकूलन के बीच: संस्कृतिकरण की प्रक्रिया

गुरपिंदर कुमार (2025) के अनुसार, डेरों में दलित अस्मिता का निर्माण केवल प्रतिरोध का परिणाम नहीं है, बल्कि इसमें प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक मूल्यों के साथ आंशिक अनुकूलन भी शामिल है। कई डेरा अनुशासन, शाकाहार, संयम, धार्मिक अनुशासन और गुरु-भक्ति पर जोर देते हैं, जो परंपरागत रूप से उच्च जातियों से जुड़ी नैतिकता का हिस्सा रहे हैं।

कुमार इस प्रक्रिया को "ब्राह्मणवादी संस्कृतिकरण" के रूप में परिभाषित करते हैं, जिसके माध्यम से दलित सामाजिक सम्मान प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। यह रणनीति दलितों को सामाजिक धब्बा का प्रतिरोध करने में मदद करती है, लेकिन साथ ही यह प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक संरचनाओं को भी बनाए रख सकती है। गुरु-केंद्रित सत्ता और अनुशासन कई बार डेरों के भीतर भी पदानुक्रम स्थापित कर देते हैं और व्यापक सामाजिक असमानताओं को चुनौती देने की क्षमता को सीमित कर देते हैं।

इस प्रकार, डेरा विरोधाभासी स्थल के रूप में कार्य करते हैं। वे दलितों को सम्मान, पहचान और सामूहिकता प्रदान करते हैं, लेकिन साथ ही उनकी अस्मिता को प्रभुत्वशाली सांस्कृतिक ढाँचे के भीतर भी सीमित कर सकते हैं। इसलिए, डेरा न तो पूरी तरह जाति-विरोधी हैं और न ही पूरी तरह जाति-समर्थक, बल्कि वे ऐसे सामाजिक-आध्यात्मिक स्थल हैं जहाँ दलित अस्मिता प्रतिरोध और अनुकूलन के बीच निरंतर निर्मित होती है।

अंततः, डेरा दलित समुदायों की सामाजिक एजेंसी और संघर्ष की जटिलता को दर्शाते हैं। वे जातिगत असमानताओं को पूरी तरह समाप्त नहीं करते, लेकिन दलितों को सम्मान, पहचान और आत्मविश्वास प्राप्त करने का महत्वपूर्ण मंच प्रदान करते हैं। इस प्रकार, समकालीन पंजाब में डेरा दलित अस्मिता के निर्माण और सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में उभरते हैं।

5. जाति और जेंडर: एक अंतःविषय (Intersectional) विश्लेषण

डेरों को दलित अस्मिता के केंद्र के रूप में समझने के लिए जेंडर के प्रश्न को शामिल करना अत्यंत आवश्यक है। दलित महिलाएँ जाति, वर्ग और पितृसत्ता के संयुक्त प्रभाव के कारण बहुस्तरीय वंचना का अनुभव करती हैं, जिससे वे सामाजिक संरचना में सबसे निचले स्तर पर स्थित होती हैं। यद्यपि डेरों को हाशिए के समुदायों के लिए आध्यात्मिक अवसर प्रदान करने वाले स्थल के रूप में देखा जाता है, फिर भी जेंडर समानता के संदर्भ में उनकी भूमिका विरोधाभासी बनी रहती है। नारीवादी विद्वानों के अनुसार, केवल जातिगत समावेशन से जेंडर न्याय स्वतः सुनिश्चित नहीं होता (Rege, 2013)।

डेरा दलित महिलाओं को धार्मिक और आध्यात्मिक गतिविधियों में भाग लेने का अवसर प्रदान करते हैं, जो उन्हें पारंपरिक धार्मिक संस्थानों में प्रायः नहीं मिलता। महिलाएँ सत्संग, भजन-कीर्तन, लंगर सेवा और सामाजिक कल्याण से जुड़े कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। ये गतिविधियाँ उन्हें भावनात्मक सहारा, सामाजिक जुड़ाव और आत्मसम्मान प्रदान करती हैं, विशेषकर उन महिलाओं के लिए जो आर्थिक असुरक्षा और सामाजिक भेदभाव का सामना करती हैं। डेरों में सहभागिता महिलाओं को धार्मिक और सांस्कृतिक भाषा के माध्यम से अपने अनुभवों और आकांक्षाओं को व्यक्त करने का अवसर भी देती है।

हालाँकि, यह सहभागिता मुख्यतः सेवा और भागीदारी तक सीमित रहती है, न कि नेतृत्व और निर्णय-निर्माण तक। डेरों में आध्यात्मिक और प्रशासनिक नेतृत्व प्रायः पुरुषों के नियंत्रण में होता है। गुरु, प्रबंध समितियाँ और निर्णय लेने वाले प्रमुख पद अधिकतर पुरुषों के पास होते हैं, जो व्यापक सामाजिक पितृसत्तात्मक संरचना को दर्शाता है (Rege, 2013)। इस प्रकार, डेरों में महिलाओं की उपस्थिति तो दिखाई देती है, लेकिन उनकी वास्तविक शक्ति और प्रभाव सीमित रहता है।

गुरपिंदर कुमार (2025) द्वारा वर्णित ब्राह्मणवादी संस्कृतिकरण की प्रक्रिया भी डेरों में जेंडर संबंधों को प्रभावित करती है। सामाजिक सम्मान प्राप्त करने के प्रयास में महिलाओं के व्यवहार को समुदाय की प्रतिष्ठा से जोड़ दिया जाता है। शालीनता, अनुशासन, नैतिकता और पारिवारिक जिम्मेदारियों पर विशेष जोर दिया जाता है, जिससे महिलाओं पर अतिरिक्त सामाजिक और नैतिक दबाव पड़ता है। इस प्रकार, सम्मान की खोज कई बार महिलाओं की स्वतंत्रता और स्वायत्तता को सीमित कर देती है।

ISSN : 3108-0294
Asha Paras Vahuvishyak Bhartiya Shodh-Patrika
(BI-ANNUAL PEER-REVIEWED, ONLINE RESEACH JOURNAL)
आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
(अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित, ऑनलाइन शोध पत्रिका)
खंड-1, अंक-2 अक्टूबर-मार्च, 2025-26, apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

अतः, डेरा एक ओर दलित महिलाओं को आध्यात्मिक पहचान और सम्मान प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे पितृसत्तात्मक संरचनाओं को पूरी तरह चुनौती नहीं देते। महिलाएँ आध्यात्मिक रूप से सम्मानित तो होती हैं, लेकिन नेतृत्व और निर्णय-निर्माण में उनकी भूमिका सीमित रहती है। यह स्थिति दर्शाती है कि डेरा आंशिक रूप से मुक्ति प्रदान करने वाले स्थल हैं, जहाँ जातिगत सम्मान तो बढ़ता है, लेकिन जेंडर समानता अभी भी एक चुनौती बनी हुई है।

6. पंजाब के प्रमुख डेरा: अनुभवजन्य उदाहरण

6.1 राधा स्वामी सत्संग ब्यास (Radha Soami Satsang Beas)

राधा स्वामी सत्संग ब्यास (RSSB), जिसका मुख्यालय पंजाब के ब्यास में स्थित है, उत्तर भारत के सबसे प्रभावशाली आध्यात्मिक आंदोलनों में से एक है। यह संस्था आंतरिक आध्यात्मिक साधना, अनुशासन, शाकाहार और जीवित गुरु के प्रति भक्ति पर जोर देती है। RSSB स्वयं को जाति-निरपेक्ष बताता है और ग्रामीण पंजाब में बड़ी संख्या में दलित अनुयायियों को आकर्षित करता है। गुरुद्वारों और गाँव की संस्थाओं में नेतृत्व से वंचित दलितों के लिए यह एक सम्मानजनक आध्यात्मिक मंच प्रदान करता है।

हालाँकि, यह संस्था जाति व्यवस्था की प्रत्यक्ष आलोचना से बचती है। इसका मुख्य ध्यान सामाजिक परिवर्तन के बजाय व्यक्तिगत आध्यात्मिक सुधार पर केंद्रित रहता है, जिसे कुमार (2025) ने "अनुकूलन आधारित अस्मिता" कहा है। इससे दलितों को सम्मान और पहचान तो मिलती है, लेकिन भूमि स्वामित्व, श्रम शोषण और जातिगत शक्ति संबंधों जैसी संरचनात्मक असमानताएँ अप्रभावित रहती हैं। महिलाओं की भागीदारी सक्रिय है, लेकिन नेतृत्व अभी भी पुरुष-प्रधान है।

6.2 डेरा सच्चा सौदा (Dera Sacha Sauda)

हरियाणा के Sirsa में स्थित डेरा सच्चा सौदा का प्रभाव पंजाब के मालवा क्षेत्र में व्यापक है। यह डेरा स्वास्थ्य शिविर, सफाई अभियान, सामूहिक विवाह और आपदा राहत जैसे कल्याणकारी कार्यों के कारण दलित समुदायों में लोकप्रिय है (Ram, 2012)। यह सेवा-आधारित आध्यात्मिकता मुख्यधारा की धार्मिक संरचनाओं के विरुद्ध सांस्कृतिक प्रतिरोध का रूप प्रस्तुत करती है।

हालाँकि, यहाँ सत्ता अत्यधिक केंद्रीकृत और गुरु-केंद्रित है, जिससे लोकतांत्रिक भागीदारी सीमित रहती है। दलित अस्मिता यहाँ सामाजिक संरचना की आलोचना के बजाय गुरु के प्रति निष्ठा के माध्यम से व्यक्त होती है। महिलाओं की भूमिका भी मुख्यतः सेवा तक सीमित रहती है, जिससे जेंडर असमानता बनी रहती है।

ISSN : 3108-0294
Asha Paras Vahuvishyak Bhartiya Shodh-Patrika
(BI-ANNUAL PEER-REVIEWED, ONLINE RESEACH JOURNAL)
आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
(अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित, ऑनलाइन शोध पत्रिका)
खंड-1, अंक-2 अक्टूबर-मार्च, 2025-26, apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

6.3 गुरु रविदास से प्रेरित रविदास डेरा

रविदास डेरा पंजाब के सबसे स्पष्ट रूप से जाति-विरोधी आध्यात्मिक संस्थानों में शामिल हैं। गुरु रविदास की शिक्षाओं से प्रेरित ये डेरा दलित धार्मिक स्वायत्तता और आत्मसम्मान को बढ़ावा देते हैं। ये डेरा जातिगत भेदभाव को खुलकर चुनौती देते हैं और दलित इतिहास, पहचान और गौरव को मजबूत करते हैं।

2009 में Vienna में रविदास अनुयायियों पर हुए हमले ने दलित चेतना को और मजबूत किया (Ram, 2014)। इसके बाद स्वतंत्र धार्मिक पहचान और पूजा स्थलों का निर्माण तेज हुआ। फिर भी, इन डेरों में भी नेतृत्व मुख्यतः पुरुषों के हाथों में केंद्रित है, जिससे जेंडर असमानता बनी रहती है।

6.4 दोआबा और मालवा के स्थानीय दलित डेरा

पंजाब के Doaba और Malwa क्षेत्रों में छोटे स्थानीय डेरा कृषि मजदूरों और प्रवासी श्रमिकों के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ये डेरा सामुदायिक सहयोग, नैतिक समर्थन और सामाजिक एकता को बढ़ावा देते हैं। आर्थिक असुरक्षा के बीच ये डेरा सामाजिक सहारा प्रदान करते हैं।

हालाँकि, ये डेरा भी अक्सर पितृसत्तात्मक संरचनाओं को बनाए रखते हैं और जाति तथा वर्ग असमानता की प्रत्यक्ष आलोचना से बचते हैं। इस प्रकार, वे सामाजिक समर्थन तो प्रदान करते हैं, लेकिन व्यापक सामाजिक परिवर्तन की उनकी क्षमता सीमित रहती है।

सार रूप में, पंजाब के डेरा दलितों को सम्मान, पहचान और आध्यात्मिक मंच प्रदान करते हैं, लेकिन साथ ही वे कई बार जाति और जेंडर आधारित संरचनात्मक असमानताओं को पूरी तरह चुनौती नहीं दे पाते। इस प्रकार, वे दलित अस्मिता के निर्माण के महत्वपूर्ण, किंतु जटिल और विरोधाभासी स्थल हैं।

7. राजनीतिक सहभागिता और उसकी सीमाएँ

पंजाब में दलित समुदाय के बीच व्यापक अनुयायी आधार होने के कारण डेरों ने एक प्रभावशाली राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरना शुरू कर दिया है। विभिन्न वैचारिक धाराओं से जुड़े राजनीतिक दल चुनावों के समय प्रमुख डेरों का समर्थन सक्रिय रूप से प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि वे बड़ी संख्या में दलित मतदाताओं को संगठित करने की क्षमता रखते हैं। ऐतिहासिक रूप से औपचारिक राजनीतिक सत्ता से वंचित रहे हाशिए के समुदायों के लिए यह सहभागिता दृश्यता और प्रभाव के नए अवसर प्रदान करती है। कुछ मामलों में, डेरों ने कल्याणकारी योजनाओं, प्रतीकात्मक मान्यता और जातिगत हिंसा से सुरक्षा की मांग को आगे बढ़ाने में सफलता प्राप्त की है, जिससे चुनावी राजनीति में दलित आवाज़ों को सशक्त बनाया गया है।

ISSN : 3108-0294
Asha Paras Vahuvishyak Bhartiya Shodh-Patrika
(BI-ANNUAL PEER-REVIEWED, ONLINE RESEACH JOURNAL)
आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
(अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित, ऑनलाइन शोध पत्रिका)
खंड-1, अंक-2 अक्टूबर-मार्च, 2025-26, apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

हालाँकि, डेरों की राजनीतिक सहभागिता महत्वपूर्ण सीमाओं से भी चिह्नित है। स्वतंत्र दलित राजनीतिक चेतना को विकसित करने के बजाय, डेर अक्सर राजनीतिक अभिजात वर्ग और हाशिए के समुदायों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाते हैं। यह मध्यस्थता सह-अपनयन (co-optation) के जोखिम को जन्म देती है, क्योंकि आध्यात्मिक अधिकार का आदान-प्रदान राजनीतिक संरक्षण के बदले किया जाता है। परिणामस्वरूप, दलित आकांक्षाएँ सामूहिक लोकतांत्रिक आंदोलन के बजाय अभिजात वर्ग के साथ वार्ताओं के माध्यम से व्यक्त होती हैं, जिससे राजनीतिक सहभागिता की परिवर्तनकारी क्षमता सीमित हो जाती है।

इसके अतिरिक्त, डेरों के माध्यम से होने वाली राजनीतिक सहभागिता आंतरिक असमानताओं को भी पुनरुत्पादित करती है। चुनावी समर्थन से जुड़े निर्णय प्रायः पुरुष गुरु या वरिष्ठ पुरुष पदाधिकारी लेते हैं, जिनमें पारदर्शिता और व्यापक परामर्श का अभाव होता है। दलित महिलाएँ, अपनी संख्या और संगठनात्मक योगदान के बावजूद, राजनीतिक निर्णय-निर्माण से काफी हद तक बाहर रहती हैं। उनकी भागीदारी अक्सर केवल जनसमर्थन जुटाने और सेवा कार्यों तक सीमित रहती है, न कि नेतृत्व या नीतिगत निर्धारण तक। यह स्थिति आध्यात्मिक लामबंदी की जेंडर सीमाओं को उजागर करती है और प्रतीकात्मक समावेशन तथा वास्तविक राजनीतिक सशक्तिकरण के बीच अंतर को रेखांकित करती है।

प्रमुख राजनीतिक दलों के साथ डेरों का जुड़ाव जाति-विरोधी आलोचना को भी कमजोर कर सकता है। स्थिरता, कल्याण और नैतिक सम्मान को प्राथमिकता देने के कारण डेर उन टकरावपूर्ण राजनीतिक प्रक्रियाओं से बच सकते हैं जो गहरे जमे जाति-वर्ग संबंधों को चुनौती देती हैं। परिणामस्वरूप, राजनीतिक सहभागिता दलितों की दृश्यता तो बढ़ाती है, लेकिन संरचनात्मक परिवर्तन को आवश्यक रूप से आगे नहीं बढ़ा पाती। इस प्रकार, आध्यात्मिक एकजुटता का वादा राजनीतिक सीमाओं के साथ सह-अस्तित्व में रहता है।

8. आलोचनाएँ और सीमाएँ

डेरों को केवल मुक्ति प्रदान करने वाले संस्थानों के रूप में समझना विश्लेषणात्मक रूप से अपर्याप्त होगा। जैसा कि इस शोध-पत्र में स्पष्ट किया गया है, डेरों को विरोधाभास, संवाद और संरचनात्मक सीमाओं से निर्मित जटिल सामाजिक संरचनाओं के रूप में देखना आवश्यक है। दलित अस्मिता के निर्माण में उनकी भूमिका महत्वपूर्ण तो है, परन्तु पूर्ण नहीं; वे गरिमा प्रदान करते हैं, लेकिन व्यापक और संरचनात्मक आलोचना की संभावनाओं को सीमित भी करते हैं।

पहला, डेर जातिगत बहिष्कार को चुनौती देते हुए दलितों को आध्यात्मिक पहुँच, सामूहिक पहचान और नैतिक मान्यता प्रदान करते हैं। किन्तु, साथ ही वे महिलाओं के नेतृत्व को सीमित कर और उनके आचरण पर नैतिक नियंत्रण

ISSN : 3108-0294
Asha Paras Vahuvishyak Bhartiya Shodh-Patrika
(BI-ANNUAL PEER-REVIEWED, ONLINE RESEACH JOURNAL)
आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
(अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित, ऑनलाइन शोध पत्रिका)
ISSN : 3108-0294
खंड-1, अंक-2 अक्टूबर-मार्च, 2025-26, apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

को सुदृढ़ कर पितृसत्तात्मक संरचनाओं को भी बनाए रखते हैं। इस प्रकार, जाति के स्तर पर समावेशन होने के बावजूद जेंडर समानता में समानांतर परिवर्तन नहीं हो पाता।

दूसरा, डेर गरिमा और प्रतीकात्मक पहचान प्रदान करते हैं, लेकिन वे संरचनात्मक अन्याय के राजनीतिक स्वरूप को कमजोर भी कर सकते हैं। जब असमानता को भौतिक और संस्थागत समस्या के बजाय नैतिक या आध्यात्मिक समस्या के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो भूमि संबंधों, श्रम शोषण और राज्य की जवाबदेही जैसे मूलभूत प्रश्नों से ध्यान हट सकता है। कल्याणकारी गतिविधियाँ, यद्यपि महत्वपूर्ण हैं, परन्तु वे अधिकार-आधारित संघर्षों और सामूहिक आंदोलनों का विकल्प बन सकती हैं।

तीसरा, डेर सामाजिक सहयोग और सामुदायिक कल्याण प्रदान करते हैं, किन्तु उनका आधार गुरु-केंद्रित अधिकार पर टिका होता है। करिश्माई नेतृत्व अनुशासन और निष्ठा को बढ़ावा देता है, लेकिन लोकतांत्रिक भागीदारी और आंतरिक आलोचना को सीमित कर देता है। इस प्रकार, ये संरचनाएँ जातिगत धब्बा को चुनौती देते हुए भी एक नई प्रकार की असमानता को पुनः स्थापित करती हैं।

ये विरोधाभास डेरों के महत्व को नकारते नहीं, बल्कि यह दर्शाते हैं कि उनके संदर्भ में निरंतर नारीवादी और जाति-विरोधी आलोचनात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है। आलोचनात्मक हस्तक्षेप के बिना, आध्यात्मिक सशक्तिकरण सामाजिक परिवर्तन के बजाय केवल अनुकूलन का माध्यम बन सकता है।

9. निष्कर्ष

पंजाब में डेर समकालीन दलित अस्मिता के निर्माण में एक महत्वपूर्ण और जटिल स्थान रखते हैं। वे वैकल्पिक सामाजिक-आध्यात्मिक संस्थानों के रूप में उभरे हैं, जिन्होंने उन समुदायों को गरिमा, समावेशन और कल्याण प्रदान किया है, जिन्हें ऐतिहासिक रूप से प्रमुख धार्मिक और सामाजिक संरचनाओं से बाहर रखा गया था। भक्ति-प्रथाओं, सामूहिक अनुष्ठानों और कल्याणकारी गतिविधियों के माध्यम से डेर ऐसे नैतिक संसार का निर्माण करते हैं, जहाँ दलितों को कलंकित जाति के रूप में नहीं, बल्कि पूर्ण आध्यात्मिक व्यक्तियों के रूप में मान्यता मिलती है।

हालाँकि, जैसा कि इस शोध-पत्र में, विशेष रूप से गुरपिंदर कुमार (2025) के विश्लेषण के संदर्भ में स्पष्ट किया गया है, डेरों के भीतर दलित अस्मिता का निर्माण प्रतिरोध और अनुकूलन के बीच निरंतर संतुलन की प्रक्रिया से प्रभावित होता है। डेर जहाँ एक ओर जातिगत अपमान को चुनौती देते हैं और प्रतीकात्मक सशक्तिकरण प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर वे प्रायः ऐसे सांस्कृतिक ढाँचों के भीतर कार्य करते हैं, जो संरचनात्मक परिवर्तन की संभावनाओं को सीमित करते हैं। ब्राह्मणवादी संस्कृतिकरण की प्रक्रिया गरिमा प्रदान करती है, किन्तु साथ ही असमानताओं और गैर-राजनीतिकरण को भी पुनः स्थापित कर सकती है।

अंतःविषयक (इंटरसेक्शनल) विश्लेषण यह भी स्पष्ट करता है कि जाति-आधारित समावेशन स्वतः ही जेंडर न्याय में परिवर्तित नहीं होता। दलित महिलाएँ आध्यात्मिक पहचान और सामुदायिक जुड़ाव तो प्राप्त करती हैं, लेकिन नेतृत्व और राजनीतिक निर्णय-निर्माण से प्रायः बाहर रहती हैं। इस प्रकार, पितृसत्तात्मक मानदंड डेरों के भीतर भी बने रहते हैं और उनके मुक्तिकामी स्वरूप को सीमित करते हैं।

अतः डेरों को न तो पूर्णतः मुक्तिदायी और न ही पूर्णतः रूढ़िवादी संस्थानों के रूप में देखा जा सकता है। वे दलित अस्मिता, सामाजिक आकांक्षाओं और संरचनात्मक सीमाओं के बीच विकसित होने वाले गतिशील सामाजिक क्षेत्र हैं। यदि डेर वास्तव में परिवर्तनकारी भूमिका निभाना चाहते हैं, तो उन्हें जाति-विरोधी दृष्टिकोण, जेंडर समानता, लोकतांत्रिक भागीदारी और जवाबदेही को अपने ढाँचे में समाहित करना होगा। तभी आध्यात्मिकता सामाजिक न्याय की व्यापक परियोजना के साथ सार्थक रूप से जुड़ सकेगी।

संदर्भ

- Ambedkar, B. R. (1987). *Annihilation of caste*. Bombay, India: Government of Maharashtra.
- Guru, G. (2009). *Humiliation: Claims and context*. New Delhi, India: Oxford University Press.
- Jodhka, S. S. (2012). *Caste in contemporary Punjab*. New Delhi, India: Oxford University Press.
- Juergensmeyer, M. (1988). *Religious rebels in the Punjab: The Ad Dharm challenge to caste*. New Delhi, India: Ajanta Publications.
- Juergensmeyer, M. (1988). *Religious rebels in the Punjab: The Ad Dharm challenge to caste*. New Delhi, India: Ajanta Publications.
- Kumar, G. (2025). Between assertion and accommodation: Brahminical Sanskritisation among Dalits in Punjab. *Dialogue*, *26*(4) +*27*(1), 134–151.
- Omvedt, G. (1995). *Dalit visions: The anti-caste movement and the construction of an Indian identity*. Hyderabad, India: Orient Longman.
- Ram, R. (2012). Ravidass, Deras and the question of Dalit identity in Punjab. *Economic and Political Weekly, 47*(21), 58–65.

ISSN : 3108-0294
Asha Paras Vahuvishyak Bhartiya Shodh-Patrika
(BI-ANNUAL PEER-REVIEWED, ONLINE RESEACH JOURNAL)
आशा पारस वहुविषयक भारतीय शोध-पत्रिका
(अर्द्धवार्षिक सहकर्मी-समीक्षित, ऑनलाइन शोध पत्रिका)
खंड-1, अंक-2 अक्टूबर-मार्च, 2025-26, apvbsp@gmail.com www.apvbsp.com

- Ram, R. (2014). Beyond conversion and Sanskritization: Articulating Dalit identity in Punjab. *Journal of Punjab Studies, 21*(2), 145–164.
- Rege, S. (2013). *Against the madness of Manu: B. R. Ambedkar's writings on Brahmanical patriarchy*. New Delhi, India: Navayana.